श्रावकाचार का मूल्यात्मक विवेचन

- डॉ. सुभाष कोठारी*

भारतीय सभ्यता और संस्कृति का विश्व के इतिहास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। यहाँ के धार्मिक और आध्यात्मिक वातावरण ने हमेशा दुनियाँ को प्रभावित किया है। जैनधर्म में इस आध्यात्मिक साधना का मूल आधार आचार माना गया है।

यहाँ आचार से तात्पर्य उन व्रतों और नियमों से है, जिनका पालन करने से व्यक्ति के जीवन में अहिंसा, क्षमा, अपरिग्रह आदि प्रवृत्तियों का समावेश होता है।

हमारे ऋषियों, महर्षियों, आचार्यों और तीर्थंकरों ने इस आचार साधना को दो भागों में विभाजित किया है। पहला, उन व्यक्तियों के लिए, जो समस्त सांसारिक बंधनों से मुक्त और त्यागी हैं और दूसरा उन व्यक्तियों के लिए, जो गृहस्थावस्था को त्यागकर समस्त सांसारिक बंधनों से मुक्त तो नहीं हो सकते हैं परन्तु मुक्त होने की दिशा में आंशिक रूप से प्रयत्न करते हैं। जिससे उनके मानस में कुछ व्रत, नियम एवं त्याग की भावना उत्पन्न होती है। जैन दर्शन की भाषा में इन्हें क्रमशः साध्वाचार और श्रावकाचार कहते हैं। चूँकि मेरा विषय श्रावकाचार से सम्बन्धित है अतः मैं अपने आपको उसी तक सीमित रखूँगा।

श्रावक शब्द का अर्थ एवं स्वरूप

श्रावक शब्द जैन दर्शन का एक "टेक्निकल" शब्द है जो संस्कृत की धातु से बना है जिसका अर्थ श्रवण करना होता है। अर्थात् व्यक्ति निष्ठापूर्वक निर्ग्रन्थ वचनों को सुनता है और अपनी क्षमता के अनुसार उन पर अमल करता है, वह श्रावक है।

वैसे देखा जाय तो श्रावक शब्द तीन अक्षरों के योग से बना है और उन तीनों के अपने-अपने अर्थ हैं। "श्रा" शब्द तत्त्वार्थ श्रद्धान की सूचना देता है। "व" शब्द विवेकयुक्त दान की प्रेरणा करता है और "क" शब्द कर्मरूपी पाप को सेवा भावना द्वारा नष्ट करने का संकेत प्रदान करता है। इस प्रकार श्रद्धा विवेक और क्रिया का सम्मिश्रण जिस व्यक्ति में होता है, वह श्रावक है।

जैन आगम ग्रन्थों में श्रावक-आचार का प्रारम्भ सूत्रकृतांगसूत्र से होता है जहाँ इसमें श्रावक और श्रमणोपासक नामों का उल्लेख मिलता है।[1] इसके बाद स्थानांगसूत्र में श्रावक के पालन करने योग्य पाँच अणुव्रतों और तीन मनोरथों का वर्णन किया गया है।[2] तदन्तर समवायांगसूत्र में श्रावक के आध्यात्मिक विकास की ग्यारह प्रतिमाओं का उल्लेख देखा जा सकता है।[3] उपासकदशांगसूत्र, जो कि जैन आगम साहित्य में श्रावक-आचार का प्रतिपादन करने वाला एक मात्र प्रतिनिधि ग्रन्थ है, उसमें श्रावकों की जीवन चर्या, बारह व्रत, नियम, प्रतिमाओं आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है।[4]

इसके बाद परवर्ती श्वेताम्बर और दिगम्बर अनेक ग्रन्थकार हुए हैं जिन्होंने अपने ग्रन्थों में श्रावक आचार का संक्षेप और विस्तार से वर्णन किया है। जिनमें उमास्वाति का तत्त्वार्थसूत्र, हेमचन्द्र का योगशास्त्र, आ. जवाहरलाल जी म.सा. का गृहस्थ धर्म, आ. समन्तभद्र का रत्नकरण्डक-श्रावकाचार, सोमदेवसूरि का उपासकाध्ययन और पं. आशाधर का सागारधर्मामृत मुख्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रावक आचार के समान्य नियम

प्रस्तुत पत्र में, मैं श्रावक शब्द का अधिकारी होने के लिए किन-किन गुणों और नियमों का पालन करना आवश्यक होता है, उस पर संक्षेप में प्रकाश डालते हुए, उन व्रतों और नियमों का हमारे सामाजिक, व्यवहारिक और राष्ट्रीय जीवन में क्या महत्त्व है उस पर भी कुछ कहना चाहूँगा।

यह शाश्वत सत्य है कि जो व्यक्ति व्यावहारिक जीवन के व्यवहारों में कुशल नहीं है वह आध्यात्मिक साधना में आगे नहीं बढ़ सकता है।[5] इसी मनोवैज्ञानिक दृष्टि को ध्यान में रख कर हमारे आचार्यों ने व्रतों की साधना की पूर्व भूमिका के रूप में ऐसे अनेक गुणों का निर्देश अपने ग्रन्थों में किया है जिनमें न्याय, नीतिपूर्वक धन का उपार्जन, पाप कर्मों का त्याग, सदाचार का पालन, धर्म श्रवण करने की जिज्ञासा, अतिथि आदि का यथोचित् सत्कार, विवेकशील, विनम्र और करुणाशील होना मुख्य है।

उपरोक्त कार्यों को करने से स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्ति व्यावहारिक जीवन में सफलतापूर्वक कार्य कर रहा है इसलिये तीर्थंकरों ने व्यक्ति के व्यावहारिक जीवन को बहुत मनोवैज्ञानिक ढंग से जांचा, परखा और उसे ही धार्मिकता का रूप देकर व्यक्ति को सामाजिक बना डाला। ये गुण आध्यात्मिक साधना के प्रवेश द्वार हैं। इनके सफल आचरण के बाद ही व्यक्ति व्रतों की आराधना में आगे कदम बढ़ा सकता है।

बारह व्रत और उनकी उपयोगिता

बारह व्रत श्रावक आचार के मूल आधार माने जाते हैं। इन बारह व्रतों को आचार्यों ने तीन वर्गों में विभाजित किया है -- पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत।

(1) अहिंसा अणुव्रत

जैन शास्त्रों में संकल्पी, आरम्भी, उद्योगी और विरोधी इन चार प्रकार की हिंसाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। उन चारों हिंसाओं में से श्रावक संकल्पी हिंसा का त्याग करता है। संकल्पी हिंसा से तात्पर्य "मैं किसी को मारूँ" इस भावना से की गयी हिंसा से है। चूँकि श्रावक गृहस्थावस्था में रहता है अतः कभी मकान निर्माण के प्रसंग से, कभी दुष्ट व्यक्ति को दण्ड देने के रूप में, कभी समाज व्यवस्था सुचारू रूप से चलाने में सूक्ष्म जीवों की हिंसा हो जाती है या यूँ कहें कि करनी पड़ती है। अतः इस हिंसा से वह पूर्ण रूप से विरत नहीं हो पाता है। हाँ ! इतना आवश्यक है कि वह इन सब कार्यों में विवेकयुक्त होकर कार्य करता है।

अतिचार

अतिचारों का तात्पर्य उन खण्डनों से है जिनसे व्रत में दोष लगने की सम्भावना रहती है। श्रावक को इन अतिचारों को ध्यान में रखना चाहिये और इनसे बचकर अपने व्रतों का पालन करना चाहिये। प्रत्येक व्रत के पाँच-पाँच अतिचार हैं। अहिंसाणुव्रत के पाँच अतिचार बन्ध, वध, छविच्छेद, भत्तपान व्यवच्छेद व अतिभार है। किसी को बांधना, मारना, अंगों को काट देना, खाने-पीने में बाधा उपस्थित करना एवं व्यक्ति की सामर्थ्य से अधिक भार डालना, व्रत भंग के कारण हैं। यह पाँचों अतिचार वर्तमान सामाजिक जगत में भी पूर्ण प्रासंगिक हैं। ये राज्य व्यवस्था की दृष्टि से अपराध है।

इस प्रकार अहिंसाणुव्रत व्यक्ति को नैतिक और सामाजिक बनाता है और समाज और राष्ट्र की आत्मसुरक्षा एवं औद्योगिक प्रगति में सहयोगी बन कर चलता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(2) सत्य अणुव्रत

कन्या, पशु, भूमि, धरोहर आदि के सम्बन्ध में असत्य भाषण का त्याग करना सत्य अणुव्रत है। इस व्रत में श्रावक ऐसे स्थूल असत्य का त्याग करता है जिससे समाज, देश और राष्ट्र की हानि होती है और व्यक्ति के आत्म-सम्मान को ठेस पहुँचती है। इसके साथ ही साथ इस व्रत में श्रावक ऐसे सत्य का भी त्याग करता है जो सत्य होते हुए भी दूसरे व्यक्ति को पीड़ा का अहसास कराता हो। भगवान् महावीर के अनन्य श्रावक महाशतक का कथानक इसका सर्वोत्तम शास्त्रीय उदाहरण है।

अतिचार

सत्य व्रत में किसी पर बिना सोच-विचार किये दोषारोपण करना, एकान्त में बातचीत करते हुए व्यक्तियों पर झूठा आक्षेप लगाना, झूठा उपदेश देना, जाली चेक, ड्राफ्ट आदि जारी करना, अतिचार माने गये हैं। वर्तमान में भी इन सभी पर राज्य द्वारा रोक लगायी जाती है। आज भी न्यायालय में धर्मग्रन्थ पर हाथ रख कर आपसे सत्य बोलने को कहा जाता है, पद और गोपनीयता की शपथ दिलाई जाती है और जाली चेक, ड्राफ्ट लेन-देन पर कठोर दण्ड दिया जाता है।

इस प्रकार सत्य अणुव्रत में श्रावक सत्य, तथ्य और प्रीतिपूर्ण वचनों का ही प्रयोग करता है, जो समाज को उन्नत और पवित्र बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

(3) अस्तेय अणुव्रत

स्वामी की अनुमति के बिना किसी भी वस्तु को ग्रहण नहीं करना अस्तेय है। सार्वजनिक रूप से प्रकृति द्वारा प्रदत्त वस्तुओं को छोड़कर अन्य वस्तु का बिना अनुमति ग्रहण नहीं करना ही श्रावक का अस्तेय अणुव्रत है।

अतिचार

चोरी की वस्तु खरीदना, चोर को सहायता करना, राज्य नियमों के विरुद्ध आचरण करना, वस्तुओं में मिलावट करना व नाप-तौल में बेईमानी करना अस्तेय व्रत के अतिचार हैं, दोष हैं।

वर्तमान जगत में भी उपरोक्त सभी अपराध की श्रेणी में माने जाते हैं। आये दिन पड़ रहे इन्कम-टैक्स व सेल्स-टेक्स के छापे इन अतिचारों के सेवन का ही एक रूप है। आज खाद्य पदार्थों से लगाकर औषधियों तक में मिलावट पायी जाती है। हम अक्सर समाचार पत्रों में देखते व पढ़ते ही हैं कि कभी फूडपोइजनिंग से, कभी जहरीली दवाइयों से एवं कभी जहरीली शराब से हजारों लोग मर जाते हैं। यह सब हमारी प्रामाणिकता पर एक प्रश्नचिन्ह लगाते हैं ?

इस प्रकार अस्तेय अणुव्रत का निरतचार पालन करने से हम मानव जाति व राष्ट्र के प्रति अपने दायित्व को भली प्रकार निभा सकते हैं।

(4) ब्रह्मचर्य अणुव्रत

काम प्रवृत्ति पर अंकुश श्रावक का चौथा ब्रह्मचर्य अणुव्रत है। गृहस्थावस्था में रह कर व्यक्ति पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकता है। अतः श्रावक एक मात्र विवाहिता पत्नी (स्वपत्नी) में पूर्ण सन्तोषी बनकर शेष सभी स्त्रियों के साथ मैथुन सेवन का त्याग करता है। श्राविकाओं के लिए एक पतिव्रत (स्वपति) का विधान किया गया है।[5]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतिचार

यहाँ यह स्पष्ट कर दिया गया है कि वेश्या आदि अन्य स्त्रियों से काम व्यवहार रखना, अनंगक्रीडा करना, अपने पुत्र-पुत्री को छोड़कर अन्य का विवाह कराना, काम सेवन की तीव्र भावना रखना व्रत भंग का कारण है, अतिचार है। एक आचार्य ने तो यहाँ तक कह दिया है कि अपनी विवाहिता स्त्री से भी अगर वह अल्पवयस्क है तो उससे काम व्यवहार नहीं करना चाहिये।

परन्तु जब इन संयमित विचारों को छोड़कर मानव अपना दृष्टिकोण दूसरा बना लेता है तो हत्या, व्यभिचार, बलात्कार जैसी भावनाएँ सहज ही प्रस्फुटित हो जाती है। प्रसंगानुकूल वर्तमान परिप्रेक्ष में इस व्रत के सन्दर्भ में कुछ लिखना अनुचित नहीं होगा। अब्रह्म को बढ़ावा देने के लिए स्वयं स्त्री जाति भी बहुत हद तक जिम्मेवार है। वे सीता, सुभद्रा आदि के चरित्रों को भूलकर, कम से कम वस्त्र धारण कर, शरीर का प्रदर्शन करती हैं। फैशन और कृत्रिम प्रसाधन सामग्री ने औरत को नुमाईश की चीज बना दिया है। पुरुष वर्ग भी इसमें बहुत हद तक दोषी होता है क्योंकि इस सब नुमाइशों के पीछे उसका मस्तिष्क व व्यावसायिक बुद्धि कार्य करती है, जिससे वह अपनी संस्कृति को किसी भी रूप में प्रयोग करने में नहीं चूकता है।

आज व्यक्ति का खान-पान, आचार-विचार, रहन-सहन सब तामसिक और अमर्यादित हो गया है। पिक्चर, अश्लील साहित्य, बेहुदे विज्ञापन से समाज का नैतिक व मानसिक पतन हो रहा है। आज हर गली मोहल्ले में 8-8, 10-10 वर्षों के नौनिहालों के मुँह से प्यार मोहब्बत के अश्लील गाने व भद्दी गालियाँ सुनी जा सकती हैं।

आज जो एड्स नामक रोग अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर फैल रहा है वह स्वैच्छिक यौन सम्बन्ध, कामसुख की तीव्र अभिलाषा और ब्रह्मचर्य नाश का ही परिणाम है। पाश्चात्य देशों में जो समलैंगिक सम्बन्ध (होमो) की प्रवृत्ति बढ़ रही है वह अनंगकीडा का ही दूसरा नाम है, जिसका हमारे आचार्यों ने हजारों वर्षों पूर्व ही निषेध कर दिया था।

इस प्रकार ब्रह्मचर्य अणुव्रत पारिवारिक शान्ति और आपसी विश्वास की भावना को सुदृढ़ करता है। उपासकदशांग में पत्नी के लिए जो धर्मसहायिका, धर्मवैद्या, धर्म-आराधिका आदि विश्लेषण प्राप्त होते हैं, वे सब इस व्रत के सफल पालन के ही परिणाम थे। आज भी हम लोगों में अपनी पत्नी के लिए "धर्मपत्नी" शब्द का प्रयोग किया जाता है, वह ब्रह्मचर्य की विशेषता का ही संकेत है।

(5) अपरिग्रह अणुव्रत

खान-पान, धन-धान्य, दास-दासी, खेत, वस्तु आदि के उपयोग की मर्यादा निश्चित कर लेना अपरिग्रह अणुव्रत है। गृहस्थावस्था में रहने के कारण व्यक्ति सामाजिक बन्धनों से बंधा होता है, अतः भविष्य की सुरक्षा व दुर्भिक्ष की आशंका से प्रत्येक व्यक्ति को कुछ न कुछ संग्रह करना आवश्यक होता है। इस कारण वह पूर्णपरिग्रही तो नहीं बन सकता है परन्तु उस परिग्रह की एक सीमा जरूर निश्चित कर लेता है। यह सीमा निर्धारण ही व्यक्ति को अपरिग्रही बनाती है।

अपरिग्रह जैनधर्म की एक महत्त्वपूर्ण विचारधारा है। जैन दर्शन में कहा गया है कि परिग्रह से वैमनस्यता, वर्गसंघर्ष व विषमता बढ़ती है क्योंकि यह सीधे-सीधे समाज को प्रभावित करता है। जब एक व्यक्ति के पास अधिक धन-सम्पत्ति होती है तब दूसरे के पास उसका अभाव स्वाभाविक है। यह अभाव और आधिक्य ही वर्ग संघर्ष का कारण है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन मतावलम्बियों में अपवाद को छोड़ दें, बाकी के पास जो सम्पत्ति है वह उनके परिश्रम व बुद्धि विलास से प्रादुर्भूत है। इसलिए सम्पत्ति का अर्जन और संग्रह बुरा नहीं है किन्तु जब इसका आधार शोषण या विषमता हो जाय तो वह समाज और राष्ट्र के लिए जहर बन जाता है। परिग्रह अणुव्रत हमें इन सब कठिनाइयों से बचा लेता है। महात्मा गांधी का ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त और विनोबा भावे का विश्वस्थ वृत्ति का सिद्धान्त महावीर के इसी अपरिग्रह अणुव्रत से सम्बन्धित है।

इस प्रकार अपरिग्रह अणुव्रत वर्तमान समाजवाद-सहअस्तित्त्व और समानता की दिशा में बहुत महत्त्वपूर्ण कदम सिद्ध हो सकता है।

गुणव्रत

पाँच अणुव्रत के विकास क्रम को व्यवस्थित आधार प्रदान करने के लिए गुणव्रत और शिक्षाव्रतों का विधान किया गया है। इनमें दिशाव्रत, उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत एवं अनर्थदण्ड तीन गुणव्रत हैं।

(6) दिशाव्रत

सभी दिशाओं में गमनागमन की मर्यादा निश्चित करने को दिशाव्रत कहा गया है। दसों दिशाओं में कितना आवागमन रखना है इसकी सीमा इस व्रत में तय की जाती है। इसमें ऊंची, नीची, तिरछी दिशा का उल्लंघन, निश्चित की हुई सीमा में वृद्धि करना, सीमा मर्यादा का विस्मरण होने पर उस मर्यादा क्षेत्र से आगे जाना व्रत भंग के कारण माने गये हैं।

(7) उपभोग-परिभोग परिमाणव्रत

खाने-पीने, पहनने, ओढ़ने आदि दैनिक व्यवहार में काम में आने वाली वस्तुओं की मर्यादा निश्चित करना उपभोग-परिभोग परिमाण-व्रत है। उपासकदशांगसूत्र में ऐसी 21 वस्तुओं की सूची दी है जिनकी इस व्रत में मर्यादा निश्चित की जानी चाहिये।[7] श्रावक-प्रतिक्रमणसूत्र में इन वस्तुओं की संख्या छब्बीस बताई गयी है।[8]

अतिचार

सचित्त वस्तु खाना, सचित्त के साथ लगी हुई वस्तु का उपयोग करना, कच्ची वनस्पति का सेवन, अधपकी वनस्पति को खाना एवं ऐसी वस्तु खाना जिसमें खाने योग्य पदार्थ कम हो, फेंकने योग्य अधिक हो तो वह सब व्रत भंग के कारण हैं।

कर्मादान

उपभोग-परिभोग-परिमाण व्रत में उपर्युक्त पाँच अतिचारों के अतिरिक्त कर्म के अनुसार 15 अतिचार और बताये हैं। ये 15 ऐसे कार्य हैं जिनके करने से भयंकर जीवों की हिंसा व समारम्भ करना पड़ता है, अतः श्रावक को इन व्यवसायों को नहीं करना चाहिये। इनके नाम इस प्रकार हैं -- कोयले का व्यवसाय, जंगल का काटना, लकड़ी बेचना, रथ आदि बेचना, पशुओं को भाड़े पर देना, खान आदि खोदना, हाथी दाँत का व्यापार, लाख का व्यापार, मदिरा आदि का व्यापार, विषादि का व्यवसाय, दास-दासी का व्यापार, घाणी आदि से पेरने का व्यापार, बैल आदि को नपुसंक बनाना, जंगल में आग लगाना, तालाब, झील आदि सुखाना, व्यभिचार आदि के लिए वेश्या आदि रखना।

इन पन्द्रह व्यवसायों में त्रस जीवों का घात, सामाजिक असुरक्षा, पर्यावरण संकट, संस्कृति का विनाश किसी न किसी रूप में होता है। अतः श्रावकों को ये व्यापार नहीं करने चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(8) अनर्थदण्ड विरमणव्रत

निष्प्रयोजन किसी की हिंसा करना अनर्थदण्ड है। हिंसा के कार्य का, हिंसात्मक शस्त्रों का, पापकर्म का उपदेश एवं कुमार्ग की ओर प्रेरित करने वाले साधनों का त्याग करता है, उसका अनर्थदण्ड विरमण व्रत सम्यक्रूप से होता है।

अतिचार

हास्यमिश्रित अशिष्टवचन बोलना, शरीर की विकृत चेष्टा करना, निरर्थक बकवाद करना, उपभोग, परिभोग का अधिक संग्रह इस व्रत के दोष हैं, अतिचार हैं।

इस प्रकार अनर्थदण्ड विरमणव्रत अनर्थकारी हिंसा पर रोक लगाता है। निरर्थक पानी फेंकना व राह चलते वनस्पति तोड़ना भी इस व्रत के दोष माने गये हैं।

(9-12) शिक्षाव्रत

ये व्यक्ति के आत्मिक अत्थान के द्योतक है, सामायिक, देशावकाशिक, प्रोषधोपवास और अतिथिसंविभाग -- ये चार इसके भेद हैं। एक निश्चित समय के लिये साधु तुल्य व्यवहार सामायिक है। सीमा मर्यादा का सूक्ष्मीकरण व सीमा के बाहर के आश्रव सेवन का त्याग देशवकाशिक, पूर्ण उपवास व धर्म स्थान पर जाकर सम्यक् आराधना, पौषध और सुपात्र को यथाशक्ति निर्दोष आहार प्रदान करना अतिथिसंविभाग है।

ये सभी शिक्षाव्रत आत्मा के आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित हैं, इनसे मानव सेवा, सहभागिता, सहयोग अभावग्रस्त के प्रति सामाजिक कर्त्तव्य का बोध प्राप्त होता है।

इस प्रकार इन बारह व्रतों की संक्षेप में चर्चा करने से स्पष्ट है कि ये बारह व्रत व्यक्ति के लिए कितने महत्त्वपूर्ण हैं। ये व्रत व्यक्ति का व्यक्ति के प्रति प्रेम, सहयोग, सहकार व बन्धुत्व की भावना को उत्पन्न करते हैं। ये व्यक्ति को सामाजिक बनाते हैं। समाज में गृहस्थ वर्ग की भूमिका वैसे भी दोहरी है। एक ओर वह स्वयं साधना करता है। दूसरी ओर पूर्णसाधना करने वाले साधु-साध्वियों के साधना का पर्यवेक्षक भी है। अतः हम अपने कर्त्तव्य को पहचानें और इन व्रतों की उपयोगिता को समझ कर जीवन में अपनाने का प्रयास करें तो निश्चित ही हम उस सामाजिक सौहार्द को ला सकेंगे, जिसकी हमें अभी प्रतीक्षा है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. सुत्तागणे... सूत्रकृतांगसूत्र, संपा. मुनि मधुकर, सूत्र 8
2. स्थानांगसूत्र, संपा. मुनि मधुकर, 5/1/389
3. वही, 11/5
4. उवासगदसो, संपा. मुनि मधुकर 1 से 10 अध्ययन
5. श्रावकधर्म की प्रासंगिकता का प्रश्न -- डॉ. सागरमल जैन, पृ. 19
6. श्रावक प्रतिक्रमणसूत्र - चौथा अणुव्रत
7. उवासगदसाओ, 1/22-42
8. श्रावक प्रतिक्रमणसूत्र - अणुव्रत 7

---

* शोधाधिकारी, आगम, अहिंसा, समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org